साप्ताहिक
Live not just breaTHE

MPHIN/2015/63220
MP/IDC1528/16-18

दि कार्मिक पोस्ट

वर्ष : 7, अंक : 30 (प्रति बुधवार), इन्दौर 16 मार्च 2022 से 22 मार्च 2022 पेज : 8 कीमत : 3 रुपये

उत्तराखंड- तापमान बढ़ते ही जलने लगे जंगल

उत्तराखंड। इस बार उत्तराखंड के जंगलों में पिछले वर्ष की तरह सर्दियों के मौसम में आग नहीं लगी। समय-समय पर हुई बारिश और बर्फबारी ने सर्दियों में तो जंगलों को आग से सुरक्षित रखा, लेकिन मार्च आते ही जिस तरह से अचानक मौसम बदला और न्यूनतम तापमान पिछले वर्षों के मुकाबले ज्यादा बढ़ गया, उसने आने वाले दिनों में राज्य के जंगलों को आग से बचाने की बड़ी चुनौती खड़ी कर दी है।

वन विभाग के मुताबिक चालू सीजन में आग लगने की पहली घटना 8 मार्च 2022 को अल्मोड़ा में हुई थी। उसके बाद से 14 मार्च दोपहर तक राज्य में 20 घटनाएं दर्ज की जा चुकी हैं, जिनमें 24.5 हेक्टेअर जंगल का क्षेत्र प्रभावित हुआ है। आने वाले दिनों में राज्य में मौसम शुष्क रहने की संभावना है। ऐसी स्थिति में हालात बिगड़ने की पूरी आशंका बनी हुई है। पिछली बार सर्दियों के मौसम में उत्तराखंड के जंगल लगातार जलते रहे थे। 15 अक्टूबर, 2020 को शुरू हुआ आग लगने के सिलसिला फरवरी और मार्च में हुई मामूली बारिश से ज्यादा दिन थम नहीं पाया। मार्च, 2021 के अंतिम दिनों में आग लगने का सिलसिला तेज हुआ और अप्रैल तक पहुंचते-पहुंचते जंगलों में आग की 1000 से अधिक घटनाएं हो गई। हालांकि आग लगने का सिलसिला पूरी गर्मियों में चलता रहा, लेकिन सबसे ज्यादा आग अप्रैल के पहले हफ्ते में लगी। पिछले वर्ष राज्य में फरवरी में करीब 25 मिमी और मार्च में 10 मिमी बारिश हुई थी। 10 मार्च, 2021 को बारिश होने के कारण कुछ दिन के लिए जंगलों में आग लगने की घटनाएं कम हो गई थी। इस बार हालांकि जनवरी और फरवरी में सामान्य से

बहुत ज्यादा बारिश हुई। लेकिन, अब स्थितियां लगातार चुनौतीपूर्ण बनती जा रही हैं। हाल के दिनों में आखिरी बारिश 26 फरवरी को दर्ज की गई थी, जो 10.8 मिमी थी। मौसम विभाग के अनुसार जनवरी और फरवरी के महीने में राज्य में 162.6 मिमी बारिश हुई, जो सामान्य से 575 प्रतिशत ज्यादा थी। इस बारिश के बाद माना जा रहा था कि इस बार जंगलों को आग से ज्यादा नुकसान नहीं होगा, लेकिन जिस तरह से मार्च के महीने में अचानक तापमान पिछले कुछ सालों की तुलना में तेजी से बढ़ा है, उससे जंगलों को लेकर चिंताएं बढ़ गई हैं।

मार्च के महीने में तापमान की स्थिति पर नजर डालें तो पिछले 10 वर्षों में यह दूसरा मौका है, जब राज्य की राजधानी देहरादून में मार्च के पहले पखवाड़े में न्यूनतम तापमान 10 डिग्री सेल्सियस से ज्यादा दर्ज किया गया है। इस बार 1 मार्च को न्यूनतम तापमान 10.0 डिग्री सेल्सियस दर्ज किया गया था। उसके बाद लगातार इसमें बढ़ोत्तरी होती रही और 13 मार्च को न्यूनतम तापमान 14.6 डिग्री सेल्सियस पहुंच गया है। इससे पहले 2018 में मार्च के पहले पखवाड़े में सबसे कम न्यूनतम तापमान 2018 में 10.8 डिग्री सेल्सियस रिकॉर्ड किया गया था। मार्च के महीने में अधिकतम तापमान भी इस बार पहले पखवाड़े में ही 31 डिग्री के पास पहुंच चुका है। पिछले 10 वर्षों में मार्च के महीने में सबसे ज्यादा अधिकतम तापमान 36.1 डिग्री सेल्सियस 30 मार्च, 2021 को दर्ज किया गया था। इसके चलते जंगलों में आग लगने की घटनाएं बढ़ रही हैं। वन विभाग ने इस सीजन में जंगलों में आग लगने की अब तक राज्यभर में 17 घटनाएं दर्ज की हैं। इनमें 14 घटनाएं रिजर्व फोरेस्ट में और 3 घटनाएं वन पंचायत के जंगलों में हुई हैं। इन घटनाओं में 20.5 हेक्टेअर वन क्षेत्र को नुकसान पहुंचा है। 48,500 रुपये का नुकसान होने का अनुमान लगाया गया है।

पिछले वर्ष से तुलना करें तो 2021 में मार्च के अंतिम सप्ताह में राज्य में जंगलों की आग की घटनाओं में बढ़ोत्तरी होने लगी थी। मध्य अप्रैल तक जंगलों ने सबसे ज्यादा और सबसे बड़ी आग की घटनाओं का सामना किया। मानसून आने तक राज्य के जंगलों में आग लगने की करीब 1400 घटनाएं हुई थी। इनमें 3,967 हेक्टेअर जंगल जल गये थे और 1 करोड़ रुपये से ज्यादा का नुकसान हुआ था। जंगलों की आग के कारण पिछले वर्ष 8 लोगों और 22 मवेशियों की भी मौत हो गई थी। इस बीच वन विभाग ने हर वर्ष की तरह इस बार भी जंगलों को आग से बचाने के लिए हर तरह के प्रयास शुरू करने की बात कही है। इनमें मास्टर कंट्रोल रूम बनाने, क्रू स्टेशन स्थापित करने, वाच टावर व्यवस्थित करने, कंट्रोल बर्निंग और फायर लाइन साफ करने के साथ जंगलों के आसपास के गांवों में लोगों को जागरूक करने जैसे कदम शामिल हैं। लेकिन, वन विभाग की मुख्य समस्या कर्मचारियों की कमी है। जंगलों में आग बुझाने के लिए सबसे ज्यादा जिम्मेदार फॉरेस्ट गार्ड और फॉरेस्टर के सैकड़ों पद अब भी खाली हैं। खासकर फॉरेस्ट गार्ड की नियुक्ति में लगातार विभाग की ओर से लापरवाही की जा रही है। राज्य में जरूरत से काफी कम फॉरेस्ट गार्ड के पद स्वीकृत हैं। स्वीकृत पदों की संख्या करीब 3600 है, लेकिन इनमें से भी कुल 13 सौ फॉरेस्ट गार्ड ही नियुक्त हैं। वन विभाग जंगलों को आग से बचाने के लिए आम नागरिकों पर ही मुख्य रूप से निर्भर है।

आयातित ऊर्जा की बढ़ती कीमत का जोखिम

नई दिल्ली। हमने नवंबर में आशा जताई थी कि ईंधन कीमतों में तेजी अस्थायी रहेगी और भारत की कोविड के पश्चात की सुधार प्रक्रिया इससे प्रभावित नहीं होगी। परंतु ईंधन कीमतें तेजी से बढ़ीं क्योंकि रूस पर प्रतिबंध लगने से आपूर्ति बाधित हुई। भारत अपनी जरूरत के कुल ईंधन का 36 प्रतिशत आयात करता है। सकल घरेलू उत्पाद में देश के ईंधन आयात की हिस्सेदारी अन्य बड़ी अर्थव्यवस्थाओं की तुलना में सर्वाधिक है। एक दशक पहले यह अनुपात 8 फीसदी के उच्चतम स्तर पर पहुंचा था लेकिन उसके बाद यह घटा और कोविड के पहले केवल चार फीसदी तथा महामारी के दौरान तीन फीसदी से भी कम रह गया।

यदि मौजूदा कीमतें बरकरार रहती हैं तो यह अनुपात पुन: बढ़कर सात प्रतिशत हो सकता है। देश में 12 महीने का शुद्ध तेल आयात फिलहाल 1.25 अरब बैरल है जो कोविड के कारण मांग घटने के पहले 1.4 अरब बैरल था। यदि आगामी वित्त वर्ष में आर्थिक उत्पादन कोविड के पहले वाले वर्ष से 10 फीसदी अधिक रहता है तो शुद्ध तेल आयात 1.5 अरब बैरल पहुंच सकता है। तेल कीमतें भी दिसंबर 2021 के स्तर से 40 डॉलर प्रति बैरल तक बढ़ चुकी हैं। यानी इस मोर्चे पर भी करीब 60 अरब डॉलर का अतिरिक्त बोझ पडऩा तय है। हालांकि यह तो प्रभाव का केवल एक हिस्सा है। गैस, कोयला, खाद्य तेल तथा उर्वरक जैसे घनीभूत ऊर्जा के अन्य स्वरूपों की कीमत भी बढ़ी है। ऐसा इसलिए भी है कि रूस और यूक्रेन इन जिंसों के विशुद्ध आपूर्तिकर्ता भी हैं। मौजूदा मूल्य पर भारत का इन जिंसों का आयात 40 अरब डॉलर तक बढ़ सकता है। यानी कुल ईंधन आयात का बोझ 100 अरब डॉलर तक बढ़ सकता है जो जीडीपी के तीन फीसदी के बराबर है। ईंधन से जुड़ी ज्यादातर चर्चा मुद्रास्फीति तथा नकदी पर प्रभाव पर आधारित रहती है जबकि उत्पादन पर भी इसका बुरा असर होता है। ऐसा तीन तरह से होता है। पहली बात, ऊर्जा की ऊंची लागत एक बार उपभोक्ताओं पर डाले जाने के बाद स्थानीय उत्पादन वाली वस्तुओं और सेवाओं की खपत को प्रतिस्थापित करेगी जिससे जीडीपी प्रभावित होगी। घरेलू आपूर्तिकर्ता के साथ वस्तुओं के मूल्य में वृद्धि के उलट यहां लाभार्थी देश के बाहर है।

बिहार में नदियों का घटता प्रवाह और जाल बन रहा गंगा डॉल्फिन का काल

बिहार। विलुप्तप्राय डॉल्फिन के संरक्षण के लिए सरकार ने 1991 में बिहार के सुल्तानगंज से लेकर कहलगांव तक के करीब 60 किलोमीटर क्षेत्र को गैंगेटिक रिवर डॉल्फिन संरक्षित क्षेत्र घोषित किया था। भारत और बिहार सरकार पिछले कई दशक से इस जलीय जीव के संरक्षण के प्रयास में है लेकिन अभी भी स्थिति संतोषजनक नहीं हो पाई है। पिछले दिनों यानी 5 मार्च को इसी एकमात्र घोषित डॉल्फिन अभ्यारण्य एरिया के नवगछिया के इस्माइलपुर पुरानी दुर्गा मंदिर के निकट एक मृत मादा की मौत मछुआरे के जाल की वजह से हो गई। इस घटना से सरकार के सारे प्रयास पर प्रश्न-चिन्ह लग जाता है।

गंगा प्रहरी स्पेयरहेड दीपक कुमार बताते हैं कि, मृत डॉल्फिन के मुंह के निचले भाग में प्लास्टिक रस्सी बंधी हुई थी और रस्सी के दूसरे छोर पर बांस की खूंटी दिख रही थी। ऐसी स्थिति तब बनती है, जब कोई मछुआरा मछलियों को जीवित अवस्था में कुछ दिन रखना चाहता हो। ऐसी स्थिति में वह रस्सी से बांधकर उसे पानी में छोड़ देता है ताकि वह एक-दो दिनों तक जीवित रहे और आवश्यकता पड़ने पर उसे निकाल सके। डॉल्फिन के साथ भी ऐसा ही हुआ होगा। वह खूंटा उखाड़ कर भागने में कामयाब रही लेकिन फंदा खोलने में असफल रही जिससे उसकी मौत हो गई। स्थानीय निवासी उमेश मंडल के अनुसार डॉल्फिन की मौत जाल में फंसने से हुई है। मछुआरे द्वारा इसे जाल से निकाल कर नदी में डूबा दिया गया था, पर वह फिर से वह उफन कर किनारे लग गया। वहीं डीएफओ अजय कुमार सिंह कहते हैं कि, पोस्टमार्टम हुआ है आगे इसका अनुसंधान होगा। उसके बाद ही कुछ बता सकते है। साथ ही मछुआरों एवं अन्य जल जीव के शिकार को लेकर भी कार्रवाई की जाएगी और जागरूकता फैलाया जाएगा। तिलकामांझी विश्वविद्यालय, भागलपुर के डॉक्टर सुनील चौधरी को इस इलाके के लोग डॉल्फिन मैन कहते हैं। वो बताते हैं कि, आज हमारे सामने डॉल्फिन को संरक्षित करने की चुनौती है। बिहार में डॉल्फिन की सबसे अधिक मृत्यु मछुआरे के जाल में फंसकर होती है। डैम या बैराज बनाने से भी यह जीव प्रभावित हुआ है। साथ ही नदी में पानी होने के कारण होने से गंगा के प्रवाह में कमी आ गई है जो सबसे बड़ा खतरा है। डॉल्फिन को प्रवाह भी चाहिए और नदी की गहराई भी। सुनील चौधरी बताते हैं कई मछुआरे डॉल्फिन का शिकार इसलिए करते हैं कि डॉल्फिन के तेल से मछली पकड़ने का चारा बनाया जाता है। चारा मतलब डॉल्फिन के तेल को नदी में फैला दिया जाता है, जिसके खूश्बू से बचवा मछलियां ऊपर आ जाती है। वहीं कुछ लोगों को यह भी गलतफहमी है कि सूंस के तेल से गठिया ठीक हो जाता है। इसीलिए डॉल्फिन को मारा जाता है। हालांकि इन सारे घटना की संख्या में पहले से कमी आई है। एशिया के एकमात्र घोषित भागलपुर डॉल्फिन अभ्यारण्य में डॉल्फिन की संख्या पर दो अलग-अलग केंद्रीय एजेंसियों की अलग-अलग रिपोर्ट आई है। अंतर्देशीय जलमार्ग प्राधिकरण (आईडब्ल्यूएआई) के सर्वे रिपोर्ट के मुताबिक भागलपुर में डॉल्फिन की संख्या 67 बताई गई है। जबकि डॉल्फिन पर रिसर्च करने वाली सरकारी एजेंसी (भारतीय प्राणी सर्वेक्षण) के मुताबिक डॉल्फिन की संख्या 150 बताई गई है। गंगा प्रहरी स्पेयरहेड दीपक कुमार बताते हैं कि, सरकार के द्वारा जब तक डॉल्फिन की सही संख्या पता नहीं रहेगी तब तक डॉल्फिन के संरक्षण के लिए कोई नियम या योजना कैसे तैयार किया जा सकता है? इन दोनों रिपोर्ट से इतर विक्रमशिला गंगा डॉल्फिन अभ्यारण के रिपोर्ट में सुल्तानगंज से बटेश्वर स्थान तक डॉल्फिन की संख्या 250 बताई गई है। गंगा नदी में डॉल्फिन का सर्वे बोट के माध्यम से किया गया था। इसमें दो नावों पर सवार टीमें गंगा के दोनों छोर से चलते हुए डॉल्फिन गिनती हैं। उनके दिखते ही जीपीएस मार्क किया जाता है। फिर दोनों टीमों के द्वारा तैयार रिपोर्टों को मिलाया जाता है। इसके बाद डॉल्फिन की संख्या बताई जाती है। आगे दीपक बताते है। डॉल्फिन स्वछ जल का भी संकेत होती हैं। गंगेज डॉल्फिन जिन जगहों पर पाई जाती हैं माना जाता है कि वहां का जल काफी स्वछ होता है। क्योंकि गंदा पानी में डॉल्फिन नहीं रहती है। ऐसे स्थिति में डॉल्फिन की संख्या घटने लगती है। बिहार के जल पुरुष के नाम से मशहूर एमपी सिन्हा बताते हैं कि, भारत के राष्ट्रीय जलीय जीव को बचाने के लिए नदियों में पानी की उपलब्धता और नदियों को गंदा करने से रोकना जरूरी है। गंगा में प्रदूषण की निरंतर निगरानी के लिए बिहार में 10 गंगा घाटों पर मॉनिटरिंग स्टेशन स्थापित किया जाना था। जो अभी तक पूरा नहीं लगाया जा सका है। शायद एक-दो जगह लगाया गया हैं, वहां की हालत ठीक नहीं है। वहीं मछली पकड़ने के लिए इस्तेमाल होने वाले समान से उपजने वाला कूड़ा भी गंगा-डॉल्फिन के लिए खतरनाक साबित हो रहा है। ऐसे में डॉल्फिन गंदे पानी के साथ संघर्ष कर रही है। एमपी सिन्हा बताते हैं कि इस सब के साथ नदी में होने वाले ध्वनि प्रदूषण के कारण भी डॉल्फिन का जीवन तनाव में आ रहा है। क्योंकि दिनों-दिन नदियों में स्टीमर और कार्गो-शीप की संख्या बढ़ रही है। इससे एक तो ध्वनि का और दूसरा चोट लगने से होने वाली मृत्यु का खतरा भी बढ़ जाता है। बिहार में पर्यटन विकास के लिए सरकार के द्वारा भागलपुर के सुल्तानगंज से अगुवानी घाट महासेतु पर डॉल्फिन ऑबर्वेटरी के निर्माण का प्रस्ताव पारित किया गया है। हैंगिंग डॉल्फिन ऑब्जर्वेटरी में गाड़ियों की पार्किंग होगी। दर्शक सीढ़ियों से नीचे उतर कर गंगा नदी के करीब जाकर एक बड़े प्लेटफार्म से डॉल्फिन का खेल देख सकेंगे। जल और जलीय जीव पर रिसर्च कर रहे पीएचडी स्कॉलर राहुल बताते हैं कि, सरकार के पर्यटन विज्ञापन में जिस तरह से डॉल्फिन को उछलता हुआ दिखाया जाता है। असल में यह समुद्र के डॉल्फिन की तरह जंप नहीं कर सकती है। यह एक स्तनधारी है और इसे सांस लेने के लिए पानी के ऊपर आना होता है। जो एक सेकेंड से भी कम समय के लिए पानी के ऊपर आती है और फिर अंदर चली जाती है। इसलिए पर्यटन विभाग में दिखाए जा रहे डॉल्फिन की फोटो समुद्री डॉल्फिन के हैं।

क्या रोगों से सुरक्षा की पहली पंक्ति हैं जंगल, जानिए स्वास्थ्य और वनों के बीच क्या है सम्बन्ध

नई दिल्ली। कोविड-19 एक ऐसी महामारी जिसने पूरी मानव जाति को हिला दिया है। इसने एक बार फिर लोगों को प्रकृति और अपने बीच के रिश्तों के बारे में सोचने के लिए मजबूर कर दिया है और यह दिखा दिया है कि हम आपस में किस तरह से जुड़े हैं। हम अपनी महत्वाकांक्षाओं को पूरा करने के लिए तेजी से इन जंगलों पर अतिक्रमण कर उनका विनाश कर रहे हैं। देखा जाए तो जंगलों का तेजी से होता विनाश और वन्यजीवों के साथ हमारा अनुचित व्यवहार इस तरह की बीमारियों के खतरे को और बढ़ा रहा है। देखा जाए तो हर साल औसतन करीब 2 वायरस अपने प्राकृतिक वातावरण को छोड़ इंसानों में फैल रहे हैं। हालांकि स्वास्थ्य को केवल इन जूनोटिक बीमारियों से ही खतरा नहीं है। जलवायु परिवर्तन, साफ हवा, पानी, कुपोषण, खाद्य सुरक्षा जैसे खतरे भी मानव स्वास्थ्य को प्रभावित कर रहे हैं, जो कहीं न कहीं इन वनों से जुड़े हैं। हाल ही में डब्ल्यूडब्ल्यूएफ द्वारा जारी नई रिपोर्ट में द वाईटालिटी ऑफ फारेस्टस÷ भी स्वास्थ्य और जंगल के बीच के अंतर्संबंधों पर प्रकाश डाला है। रिपोर्ट के अनुसार दुनिया में फैलने वाली हर तीन में से एक नई बीमारी भूमि उपयोग और जंगलों के विनाश से जुड़ी है। देखा जाए तो यह संक्रामक बीमारियां गरीब और कमजोर देशों में मृत्यु का प्रमुख कारण है। साथ ही पांच वर्ष से छोटे बच्चों की मृत्यु के लिए प्रमुख रूप से जिम्मेवार है। उदहारण के लिए इबोला को ही ले लीजिए जिसके प्रसार के लिए अन्य कारकों की तुलना में वन विनाश को 60 फीसदी जिम्मेवार माना गया है। गौरतलब है कि हमारे अनछुए जंगल वन्य जीवों की अलग-अलग प्रजातियों के लिए आवास को बांट देते हैं जिससे एक दूसरी प्रजातियों में संक्रामक बीमारियों के फैलने का खतरा नहीं रहता। लेकिन जिस तरह से इन वनों का विनाश हो रहा है उसने इन प्रजातियों को सीमित क्षेत्र में केंद्रित कर दिया है जिसकी वजह से इन संक्रामक बीमारियों के पैदा और प्रसार का खतरा बढ़ गया है। अनुमान है कि 75 फीसदी संक्रामक बीमारियां जूनोटिक यानी जंगली जीवों से इंसानों में फैली हैं। जिसके अब तक 250 करोड़ मामले सामने आ चुके हैं। इतना ही नहीं यह हर साल होने वाली करीब 27 लाख मौतों के लिए जिम्मेवार है। इन बीमारियों का करीब 44 फीसदी बोझ कमजोर देशों पर पड़ रहा है। इसी तरह जलवायु परिवर्तन के मामले में भी जंगलों की अहम भूमिका है। जिस तरह से इनका विनाश हो रहा है उससे जलवायु परिवर्तन और बढ़ते तापमान का खतरा कर बढ़ता जा रहा है। नतीजन बाढ़ तूफान जैसी आपदाएं कहीं ज्यादा सक्रिय होती जा रही हैं। इन जलवायु आपदाओं के चलते मच्छर और टिक्स जैसे जीवों से फैलने वाले संक्रामक रोगों का खतरा भी बढ़ रहा है। वहीं जैसे-जैसे वातावरण में कार्बन डाइऑक्साइड (सीओ2) बढ़ रही है उसके चलते खाद्य पदार्थों में पोषण की कमी आ रही है। जो सीधे तौर पर हमारे स्वास्थ्य पर असर डालते हैं। ऐसे में हमारे जंगल जलवायु परिवर्तन के असर को सीमित कर हमारे स्वास्थ्य को भी बचाए रखने में मदद करते हैं और इसका मुकाबला करने के लिए अनुकूल माहौल तैयार करते हैं। अनुमान है की हर साल करीब 31 लाख बच्चे कुपोषण से मर रहे हैं। वहीं जो बच्चे अपने जन्म के पहले 1,000 दिन कुपोषण के बावजूद बचे रह जाते हैं उन्हें भी जीवन भर स्वास्थ्य, सामाजिक और वित्तीय चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। दूसरी तरफ जिन बच्चों को पर्याप्त पोषण मिलता हैं उनका न केवल शारीरिक बल्कि मानसिक स्वास्थ्य भी दुरुस्त रहता है। इसी तरह हर साल करीब 4.1 करोड़ लोग हृदय रोग, कैंसर, सांस की बीमारियों, मधुमेह और मानसिक स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं की भेंट चढ़ जाते हैं। यह वो गैर संक्रामक रोग हैं जो दुनिया भर में बड़ी तेजी से अपने पैर पसार रहे हैं, जिसका करीब 77 फीसदी बोझ निम्न और माध्यम आय वाले देशों पर पड़ रहा है। देखा जाए तो पेड़ों और जंगलों के संपर्क में आने से इनका खतरा काफी कम हो जाता है। प्राकृतिक वातावरण इंसान में कोर्टिसोल, प्रोजेस्टेरोन और एड्रेनालाईन जैसे तनाव सम्बन्धी हार्मोन को कम कर देता है, जिससे इन बीमारियों का खतरा घट जाता है। यदि वायु प्रदूषण से जुड़े आंकड़ों को देखें तो इसके चलते हर साल करीब 80 लाख लोगों की जान जा रही है। इनमें से अधिकांश जानें हृदय रोग, कैंसर, सांस और फेफड़ों सम्बन्धी बीमारियों के कारण जा रही हैं। इसी तरह जल प्रदूषण भी बड़ी संख्या में लोगों की जान ले रहा है। देखा जाए तो हमारे जंगल, वायु और पानी से हानिकारक प्रदूषकों को छानकर संक्रामक और गैर संक्रामक रोगों के खतरे को कम करते हैं।

साभार - डाउन टू अर्थ

पहाड़ों में प्रकृति आधारित समाधान सूखे के प्रभाव को कम कर सकते हैं

एक नए अध्ययन के मुताबिक पहाड़ों में विदेशी पेड़ो की प्रजातियों के फैलने और उनके प्रबंधन के माध्यम से पानी के बहने या जलग्रहण को बहाल किया जा सकता है। सूखे के दौरान नदी का कम प्रवाह जलवायु परिवर्तन के प्रभाव को कम कर सकता था। यह अध्ययन केप टाउन विश्वविद्यालय (यूसीटी) में अफ्रीकी जलवायु और विकास पहल (एसीडीआई) के डॉ पेट्रा होल्डन के नेतृत्व में किया गया है।

जलवायु परिवर्तन चरम मौसम की घटनाओं जैसे सूखा और बाढ़ पर असर डाल रहा है। प्रकृति आधारित समाधान, जैसे जलग्रहण की फिर से बहाली करने में सामाजिक चुनौतियों का समाधान करना। इसके साथ ही पारिस्थितिक तंत्र के साथ भी काम करना शामिल है। इन चुनौतियों में जल संसाधनों पर जलवायु परिवर्तन के प्रभाव भी शामिल हैं। अब तक के अध्ययनों ने प्राकृतिक जलवायु बदलाव से पानी की उपलब्धता, मानवजनित जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने में प्रकृति आधारित समाधानों की भूमिका को अलग नहीं किया है। अध्ययनकर्ता जल संसाधन अनुकूलन योजना को लागू करना चाहते हैं। शोधकर्ताओं की टीम ने यह नया अध्ययन, उदाहरण के रूप में केप टाउन डे ज़ीरो सूखे का उपयोग करके तैयार किया है। उनका ध्यान पहाड़ों में आक्रामक विदेशी पेड़ो की प्रजतियों के प्रबंधन के माध्यम से एक विशिष्ट प्रकार के जलग्रहण की बहाली करने का था। होल्डन ने बताया कि केप पहाड़ों की मूल वनस्पति की तुलना में आक्रामक विदेशी पेड़ों में उच्च वाष्पोत्सर्जन दर होती है, इस तरह पानी के बहने की गति कम हो जाती है। शोध दल ने ÷डे ज़ीरो÷ सूखे के दौरान धारा प्रवाह का सिमुलेशन करने के लिए जलवायु मॉडल और हाइड्रोलॉजिकल मॉडल को एक साथ जोड़ा। उन्होंने तब इस चीज का परीक्षण किया कि यदि मानवजनित जलवायु परिवर्तन नहीं होता तो जल विज्ञान संबंधी सूखा कितना गंभीर होता। उनका उद्देश्य जलवायु परिवर्तन के प्रभावों और केप टाउन को पानी की आपूर्ति के लिए पहाड़ी जलग्रहण क्षेत्रों से बहने वाले पानी तथा विदेशी पेड़ों के प्रबंधन का था। होल्डन ने बताया कि मौजूदा अध्ययन जलवायु परिवर्तन के मानवजनित जिम्मेवारी के हिस्से में प्रकृति-आधारित समाधानों के प्रभाव को अलग नहीं करते हैं। विशेष रूप से सूखे की घटनाओं के लिए जो पहले भी हो चुके हैं। कुछ अध्ययन मानवजनित कारणों के लिए जैव-भौतिक प्रभावों को जिम्मेवार ठहराते हैं। इस प्रभाव में सुधार करने के प्रकृति-आधारित समाधानों की भूमिका की जांच के साथ-साथ सूखे की घटनाओं पर जलवायु परिवर्तन के प्रभाव को भी देखा जाता है। इस नए विश्लेषण से पता चलता है कि जलवायु परिवर्तन ने जलवायु पर मानवजनित प्रभाव के बिना दुनिया के सापेक्ष सूखे के दौरान पानी के प्रवाह को 12 से 29 फीसदी तक कम कर दिया। इसके अलावा, यह दर्शाता है कि सूखे की मार से पहले जलग्रहण क्षेत्र में मौजूद विदेशी पेड़ों को साफ करने से पानी बहने की गति पर मानवजनित जलवायु परिवर्तन का प्रभाव कम हो सकता था, लेकिन प्रभाव विदेशी पेड़ों के फैलने की सीमा पर निर्भर करता है। आक्रामक पेड़ों के मध्यम स्तर में सुधार करने जैसे कि कुछ जलग्रहण क्षेत्रों में 40 फीसदी तक कवरेज देखा गया। इसके परिणामस्वरूप पानी के बहने की गति पर मानवजनित जलवायु परिवर्तन प्रभाव का 3 से 16 फीसदी तक सुधार होता है। मौजूदा स्तरों से पूर्ण जलग्रहण आक्रामक विदेशी पेड़ों के फैलने को रोकना मानवजनित जलवायु परिवर्तन के कारण धारा प्रवाह में 10 से 27 फीसदी की अतिरिक्त कटौती से बचा जा सकता है। शोधकर्ताओं ने यह भी पाया कि जलग्रहण प्रक्रियाओं के कारण जलवायु परिवर्तन का प्रभाव बढ़ गया था। उदाहरण के लिए, धारा प्रवाह में 12 से 29 फीसदी की कमी, मानवजनित जलवायु परिवर्तन के कारण होने वाली वर्षा में 7 से 15 फीसदी कमी से अधिक देखी गई। सूखे की घटनाओं में वाष्पीकरण की भूमिका निभाने के बावजूद, शोधकर्ताओं ने वाष्पीकरण पर जलवायु परिवर्तन का बड़ा प्रभाव नहीं पाया। यह अध्ययन जलवायु परिवर्तन अनुकूलन योजना को हल करने के लिए मात्रात्मक आकलन के महत्व को उजागर करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। शोधकर्ता यह दिखाने में सक्षम थे कि जलग्रहण की बहाली ने मानवजनित जलवायु परिवर्तन के प्रभाव को कम किया, लेकिन मानवजनित जलवायु परिवर्तन के सभी प्रभावों को पूरी तरह से दूर करने में सफल नहीं हुए। होल्डन ने कहा कि ढलने या अनुकूलन रणनीतियों के योगदान को छेड़ना चाहे वे प्रकृति-आधारित हों या नहीं, जलवायु में मानवजनित बनाम प्राकृतिक बदलाव से समाज को सुरक्षित करना चुनौतीपूर्ण हो सकता है। हालांकि, अनुकूलन योजना को लागू करना महत्वपूर्ण है ताकि जलवायु संबंधी खतरों के प्रबंधन रणनीति हो सके। उन तरीकों से जुड़ा हुआ है जो शुरूआती सीमा को बदलने पर विचार करते हैं। यह अध्ययन कम्युनिकेशन अर्थ एंड एनवायरनमेंट पत्रिका में प्रकाशित हुआ है।

साभार - डाउन टू अर्थ

इतिहास के उच्चतम स्तर पर पहुंचा ऊर्जा सम्बंधित उत्सर्जन, 2021 में 3,630 करोड़ टन किया गया दर्ज

नई दिल्ली। कोविड-19 से उबरते हुए वैश्विक अर्थव्यवस्था ने मजबूत वापसी की है। जिसका असर ऊर्जा सम्बंधित कार्बन उत्सर्जन पर भी स्पष्ट तौर पर देखा जा सकता है। इस बारे में इंटरनेशनल एनर्जी एजेंसी (आईईए) द्वारा जारी हालिया विश्लेषण ÷ग्लोबल एनर्जी रिव्यू-सीओ2 एमिशन इन 2021 से पता चला है कि 2021 में वैश्विक स्तर पर ऊर्जा सम्बंधित उत्सर्जन 3,630 करोड़ टन पर पहुंच गया था, जोकि अपने आप में एक रिकॉर्ड है।

देखा जाए तो 2020 में कुल ऊर्जा सम्बंधित उत्सर्जन 3,420 करोड़ टन था, जिसका मतलब है कि 2021 के दौरान इसमें 6 फीसदी (210 करोड़ टन) की वृद्धि हुई थी। वहीं बढ़ता उत्सर्जन एक और चीज स्पष्ट करता है कि आज भी हम अपनी ऊर्जा सम्बन्धी जरूरतों के लिए कहीं हद तक कोयले पर ही निर्भर हैं। 2021 में होने वाले इस कुल ऊर्जा उत्सर्जन में करीब 40 फीसदी से ज्यादा की हिस्सेदारी कोयले की थी। आंकड़ों के मुताबिक इस दौरान कोयला आधारित बिजली उत्पादन की वजह से करीब 1,530 करोड़ टन कार्बन उत्सर्जित हुआ था, जोकि अब तक का उच्चतम है। इसी तरह इस दौरान नेचुरल गैस के चलते होने वाले उत्सर्जन में भी 2019 की तुलना में वृद्धि दर्ज की गई थी जो बढ़कर 750 करोड़ टन पर पहुंच गया था। 2021 में ऊर्जा क्षेत्र से होने वाले मीथेन उत्सर्जन में भी करीब 5 फीसदी की वृद्धि देखी गई थी, हालांकि इसके बावजूद वो 2019 के स्तर से कम थी। यदि महामारी की बात करें तो इस दौरान चीन दुनिया की इकलौती ऐसी बड़ी अर्थव्यवस्था थी, जिसमें इस दौरान 2020-21 में वृद्धि दर्ज की थी। जिसका असर साफ तौर पर उसके कार्बन उत्सर्जन पर भी देखा जा सकता है। यदि 2021 के आंकड़ों को देखें तो 2021 में चीन का ऊर्जा क्षेत्र से होने वाला कुछ उत्सर्जन 1,190 करोड़ टन पर पहुंच गया था जोकि कुल वैश्विक उत्सर्जन का करीब 33 फीसदी हिस्सा है। 2019 की तुलना में देखें तो 2021 में चीन के ऊर्जा क्षेत्र से होने वाले कुल उत्सर्जन में करीब 75 करोड़ टन की वृद्धि दर्ज की गई है। चीन के इस बढ़ते उत्सर्जन के लिए वहां बड़े पैमाने पर बढ़ती ऊर्जा की मांग जिम्मेवार है। 2021 के दौरान इसकी कुल ऊर्जा मांग में करीब 10 फीसदी की वृद्धि दर्ज की गई थी, जोकि चीन के आर्थिक विकास की दर से भी ज्यादा है। देखा जाए तो चीन अभी भी अपनी बिजली की बढ़ती जरूरतों को पूरा करने के लिए कहीं न कहीं कोयले पर निर्भर है जोकि उसके उत्सर्जन में भी वृद्धि कर रही है। गौरतलब है कि 2021 में चीन की बिजली सम्बन्धी मांग 700 टेरावाट घंटे बढ़ गई थी, जिसके आधे से अधिक हिस्से को कोयला आधारित बिजली की मदद से पूरा किया गया था। यदि भारत से जुड़े आंकड़ों को देखें तो देश में आज भी ऊर्जा उत्पादन का करीब 59.7 फीसदी हिस्सा जीवाश्म ईंधन पर निर्भर है। वहीं सिर्फ कोयले पर निर्भरता की बात की जाए तो वो करीब 51.6 फीसदी है। महामारी के बाद जब अर्थव्यवस्था दोबारा पटरी पर लौटने लगी तो भारत के कार्बन उत्सर्जन में भी जोरदार उछाल देखा गया। इसी का नतीजा है कि 2021 में देश का कोयला आधारित बिजली उत्पादन रिकॉर्ड स्तर पर पहुंच गया था, जिसमें 2020 की तुलना में करीब 13 फीसदी की वृद्धि दर्ज की गई थी। यही वजह है कि 2019 की तुलना में 2021 के दौरान देश के कुल ऊर्जा उत्सर्जन में करीब 8 करोड़ मीट्रिक टन का इजाफा दर्ज किया गया था।

साभार - डाउन टू अर्थ

किसान पर पड़ती जलवायु की मार

मुंबई। बदलती जलवायु जहां एक ओर कृषि और खाद्य सुरक्षा के लिए बड़ा खतरा बन गई है। वहीं दूसरी तरफ यह पशुपालकों और उनके पशुधन पर भी व्यापक प्रभाव डाल सकती है। इस बारे में वैज्ञानिकों का अनुमान है कि जिस तरह से तापमान में वृद्धि हो रही है, उसके चलते सदी के अंत तक भारत में डेयरी उत्पादन 45 फीसदी तक घट जाएगा। वहीं अमेरिका के डेयरी और मीट उत्पादन में करीब 6.8 फीसदी की गिरावट आ सकती है। गौरतलब है कि भारत दुनिया का एक प्रमुख डेयरी उत्पादक देश है। जहां किसान अपनी जीविका के लिए काफी हद तक अपने मवेशियों पर निर्भर हैं। ऐसे में बढ़ता तापमान उनके लिए बड़ी समस्या पैदा कर सकता है। इस बारे में कॉर्नेल विश्वविद्यालय से जुड़े वैज्ञानिकों द्वारा एक विस्तृत शोध किया गया है जोकि अंतराष्ट्रीय जर्नल द लैंसेट प्लैनेटरी अर्थ में प्रकाशित हुआ है। इस शोध में वैज्ञानिकों ने मवेशियों पर बढ़ते तापमान के असर को समझने का प्रयास किया है और यह जानने की कोशिश की है कि इससे डेयरी उत्पादन (दूध और मीट) पर कितना असर पड़ेगा। उनके अनुसार तापमान में होती वृद्धि जब मवेशियों के सहन क्षमता से बढ़ जाएगी तो उसका असर उनके वजन, दुग्ध उत्पादन और प्रजनन क्षमता को प्रभावित कर सकता है। यदि इससे उत्पादकता पर प्रभाव न भी पड़े तो भी गर्मी से पैदा होता तनाव छोटी अवधि में ही सही लेकिन इन जीवों पर नकारात्मक प्रभाव डाल सकता है। ऐसे में यह मुद्दा केवल पशु उत्पादन का ही नहीं बल्कि उनके कल्याण से भी जुड़ा है।

अपने इस शोध में वैज्ञानिकों ने 2045 और 2085 तक जलवायु परिदृश्य एसएसपी1 - 2.5 और एसएसपी5 - 8.5 के तहत बढ़ते तापमान के आधार पर मवेशियों पर पड़ने वाले असर का पूर्वानुमान किया है। जिसमें यह बताया गया है कि बढ़ते तापमान के पशुओं के आहार पर कितना प्रभाव पड़ेगा, साथ ही इससे डेयरी उत्पादन और वैश्विक अर्थव्यवस्था को कितना नुकसान हो सकता है। यदि भारत में दूध उत्पादन को देखें तो सदी के अंत तक जलवायु परिवर्तन के चलते इसमें प्रति मवेशी 25 फीसदी तक की गिरावट आ सकती है। जहां शुष्क और अर्ध शुष्क क्षेत्रों में इसके सबसे ज्यादा 24.6 फीसदी रहने का अनुमान है। वहीं आर्द्र और उप आर्द्र क्षेत्रों में 9.9 फीसदी जबकि समशीतोष्ण या उष्णकटिबंधीय उच्चभूमियों पर 1.8 फीसदी रहने की सम्भावना है। इसी तरह एसएसपी5 - 8.5 परिदृश्य में सदी के अंत तक देश में बीफ उत्पादन 45 फीसदी तक गिर जाएगा। देखा जाए तो भारत में प्रति मवेशी उत्पादन कम है लेकिन यदि हालिया आंकड़ों को देखें तो देश में करीब 20 करोड़ मवेशी हैं जो उत्पादन को काफी बड़ा बना देते हैं। इसके जो निष्कर्ष निकलकर सामने आए हैं उनके अनुसार बढ़ते तापमान के चलते एसएसपी5 - 8.5 परिदृश्य में सदी के अंत तक डेयरी उत्पादन को हर साल करीब 3.07 लाख करोड़ रुपए का नुकसान होगा। यदि 2005 से इसकी तुलना की जाए तो वो करीब 10 फीसदी के बराबर बैठता है। अनुमान है कि इसका सबसे ज्यादा असर भारत, अफ्रीका और दक्षिण अमेरिका के उष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों पर पड़ेगा। वैज्ञानिकों की मानें तो तापमान में हर एक डिग्री की वृद्धि के साथ मवेशी अपने चारे में 5 फीसदी की कमी कर देंगे, जिसका सीधा असर उनके विकास, उत्पादन और प्रजनन क्षमता पर पड़ेगा। चूंकि हम जानते हैं कि निम्न और मध्यम आय वाले देशों में जहां बढ़ता तापमान नई समस्याएं पैदा कर रहा है साथ ही वहां डेयरी उत्पादों की मांग भी लगातार बढ़ रही है। ऐसे में यह जरुरी है कि पशुपालक बदलती जलवायु का सामना करने के लिए तैयार रहें और उससे निपटने के लिए बुनियादी ढांचे को दुरुस्त करें। मवेशियों के लिए छाया, वेंटिलेशन और उन्हें ठंडक देने के उपायों पर ध्यान देना होगा, साथ ही ऐसी नस्लों पर ध्यान केंद्रित करना होगा जो बढ़ती गर्मी के प्रकोप को सह सकें। इस बारे में कॉर्नेल विश्वविद्यालय और शोध से जुड़े प्रमुख शोधकर्ता फिलिप थॉर्नटन का कहना है दुनिया के पिछड़े देशों में किसान गरीब है उनके पास सीमित संसाधन हैं। जो अपनी जीविका के लिए कहीं हद तक अपने मवेशियों पर निर्भर हैं। ऐसे में उन देशों में जहां किसानों पर सबसे ज्यादा असर पडने की सम्भावना है वहां अनुकूलन की जरूरत भी उतनी ज्यादा है। वहीं अन्य शोधकर्ता मारियो हेरेरो का कहना है कि हम सिर्फ यह आशा नहीं कर सकते कि गरीब इससे प्रभावित नहीं होंगें। हमें जलवायु परिवर्तन का मुकाबला करना होगा, जिससे कोई पीछे न छूटे।

साभार - डाउन टू अर्थ

अस्पताल में क्यों बढ़ रही है, हाइपोनेट्रेमिया मरीजों की संख्या

मुंबई। दुनिया में जैसे-जैसे तापमान में वृद्धि हो रही है वैसे-वैसे उसके नित नए खतरे भी सामने आ रहे हैं। हाल ही में पता चला है कि तापमान में हर दो डिग्री सेल्सियस की वृद्धि के साथ अस्पताल में हाइपोनेट्रेमिया के मरीजों की संख्या 14 फीसदी बढ़ जाएगी। गौरतलब है कि हाइपोनेट्रेमिया एक ऐसी बीमारी है जिसमें रक्त में मौजूद सोडियम का स्तर असामान्य रूप से कम हो जाता है।

इस पर हाल ही में स्वीडन के करोलिंस्का इंस्टिट्यूट द्वारा एक शोध किया गया है, जिसके निष्कर्ष द जर्नल ऑफ क्लिनिकल एंडोक्रिनोलॉजी एंड मेटाबॉलिज्म में प्रकाशित हुए हैं। इस बारे में क्लिनिकल साइंस एंड एजुकेशन विभार और इस शोध से जुड़े शोधकर्ता बस्टर मैनहाइमर के अनुसार उनका यह शोध अपनी तरह का पहला अध्ययन है जो बढ़ते तापमान और हाइपोनेट्रेमिया के जोखिम के बारे में सटीक जानकारी देता है और बताता है कि बढ़ता तापमान इस बीमारी के खतरे को कैसी प्रभावित कर सकता है। उनके मुताबिक अध्ययन के जो निष्कर्ष सामने आए हैं उनका उपयोग स्वास्थ्य सम्बन्धी योजनाओं में किया जा सकता है जिससे बढ़ते तापमान से बेहतर तरीके से निपटा जा सके। हम पहले ही जानते हैं कि आने वाले कुछ दशकों में तापमान सामन्य से कहीं ज्यादा बढ़ जाएगा, जिसके कारण गर्मी से जुड़े अनेकों प्रभाव स्वास्थ्य पर पड़ेंगें, जिनमें से हाइपोनेट्रेमिया भी एक है। यह शहरी में विभिन्न प्रकार की बीमारियों जैसे हृदय रोग, गुर्दे, लीवर की विफलता के साथ-साथ गर्मी के चलते बहुत ज्यादा पसीना निकलने या तरल पदार्थों के सेवन से हो सकता है। गौरतलब है कि जरुरत से ज्यादा पानी या तरल शरीर में सोडियम की मात्रा को कम कर सकता है। देखा जाए तो हमारे शरीर को ब्लड प्रेशर को सामान्य रखने के लिए सोडियम की आवश्यकता होती है, जो नसों और मांसपेशियों के कार्य में मदद करता है। साथ ही यह हमारी कोशिकाओं में और उसके आसपास द्रव संतुलन को नियंत्रित करता है। यदि रक्त में सोडियम का स्तर गिरता है तो इसकी वजह से मितली, चक्कर आना, मांसपेशियों में ऐंठन, दौरे और यहां तक ??कि इससे इंसान कोमा में भो जा सकता है, या फिर उसकी मृत्यु भी हो सकती है। हम पहले ही जानते हैं कि गर्मी में हाइपोनेट्रेमिया के मामले बढ़ जाते हैं। ऐसे में यदि तापमान में और वृद्धि होती है तो भविष्य में इसका खतरा कहीं ज्यादा बढ़ जाएगा। स्वीडन में शोधकर्ताओं द्वारा किए इस शोध से पता चला है कि वहां 11,000 से अधिक लोगों को हाइपोनेट्रेमिया के इलाज के लिए अस्पताल में भर्ती कराया गया था, जिनमें से अधिकांश औसतन 76 वर्ष की महिलाएं थीं। शोधकर्ताओं का अनुमान है कि सामान्य दिनों की तुलना में गर्म दिनों में हाइपोनेट्रेमिया के कारण अस्पताल में भर्ती होने का जोखिम लगभग दस गुना बढ़ गया था, जिसका सबसे ज्यादा जोखिम महिलाओं और बुजुर्गों पर था। पता चला है कि 80 वर्ष या उससे अधिक उम्र के लोगों की गर्मी के दौरान अस्पताल में भर्ती होने का खतरा 15 गुना अधिक था। शोधकर्ताओं ने जब 2050 के आधार पर तापमान में होने वाली वृद्धि का अनुमान लगाया है तो उनका अनुमान है कि तापमान में 2 डिग्री सेल्सियस की वृद्धि के साथ अस्पताल में हाइपोनेट्रेमिया के कारण भर्ती होने का खतरा 13.9 फीसदी तक बढ़ सकता है। ऐसे में यह जरुरी है कि बढ़ते तापमान के साथ लोग अपने स्वास्थ्य का भी ध्यान रखें। साथ ही भविष्य की स्वास्थ्य योजनाओं में इन को भी शामिल किया जाए। बढ़ता उत्सर्जन न केवल स्वास्थ्य बल्कि पूरी मानव जाति के लिए खतरा है जिसे कम करना अत्यंत जरुरी है।

स्वामी, मुद्रक, प्रकाशक सोनल मेहता केलिए प्रतीक्षा ग्राफिक्स, 127 देवी अहिल्या मार्ग, इंदौर (म.प्र.) से मुद्रित एवं 209-बी शहनाई रेसीडेंसी-2 कनाड़िया रोड इंदौर (म.प्र.) से प्रकाशित। संपादक: डॉ. सोनल मेहता फोन : 0731-2595008 Mail.sonal12mehta@yahoo.co.in 9755040008